International Journal of Social Science and Education Research

ISSN Print: 2664-9845
ISSN Online: 2664-9853
Impact Factor: RJIF 8.15
IJSSER 2025; 7(1): 590-594
www.socialsciencejournals.net
Received: 01-04-2025
Accepted: 05-05-2025

डॉ. योगेंद्र सिंह
असि. प्रो. इतिहास,
सम्राट पृथ्वीराज चौहान,
पीजी कॉलेज रोहालकी
किशनपुर–बहादराबाद, हरिद्वार,
उत्तराखंड, भारत

Corresponding Author:
डॉ. योगेंद्र सिंह
असि. प्रो. इतिहास,
सम्राट पृथ्वीराज चौहान,
पीजी कॉलेज रोहालकी
किशनपुर–बहादराबाद, हरिद्वार,
उत्तराखंड, भारत

रामायण में प्रतिबिंबित नारी जीवन

डॉ. योगेंद्र सिंह

DOI: https://www.doi.org/10.33545/26649845.2025.v7.i1g.347

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति में पुरूष और स्त्री के संयोग से सृष्टि की उत्पत्ति अभिलिखित है। इस सृष्टि के समस्त मनुष्यों की जननी नारी ही है, नारी के बिना अकेला नर नश्वर है। गृहस्थाश्रम की मूल संचालिका शक्ति, माताओं पर ही अविलंबित है। भारतीय दृष्टि से परिवार-संचालन, शिशु के पालन-पोषण और संवर्धन का मुख्य दायित्व गृहस्वामिनी नारी जाति पर ही निर्भर करता आया है, इसलिए भारतीय संस्कृति प्रारंभ से ही नारी की उपासक रही है। सृष्टि की स्थापना में नारी जहां प्रकृति के रूप में चिन्हित है, वहीं वह लौकिक जगत में माता, पुत्री तथा पत्नी के रूप में उसका प्रमुख स्थान है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर सृष्टि के प्रांरभ से ही नारी के महत्व का एक स्पष्ट चित्रण हमारे सामने दृष्टिगोचर होता है। भारतीय साहित्य में नारी के इन रूपों का विशद वर्णन किया गया है। महाकाव्य रामायण उसी साहित्य का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है।

रामायण का रचनाकाल

रामायण की रचना महर्षि वाल्मीकि ने की थी। रामायण में सात काण्ड, जो क्रमशः बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किंधाकाण्ड, सुंदरकाण्ड, युद्धकाण्ड और उत्तरकाण्ड हैं। रामायण के संदर्भ में विद्वानों के अपने-अपने मत हैं। पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों ने अपने-अपने तर्कों के आधार पर इसका रचनाकाल निर्धारित करने का प्रयास किया है। पाश्चात्य विद्वान पर्जिटर का मत है कि रामायण की रचना १६०० ई.पू. में हुई थी। इटली के गोरेशियो ने रामायण की रचना उससे घटित घटनाओं, भाषाओं एवं शब्दावलियों के आधार पर १२०० ई.पू. निर्धारित किया है।[१] मैक्डोनल ने रामायण की रचना ५०० ई.पू. से २०० ई.पू. मानी है।[२] विंतरनित्स ने रामायण का रचनाकाल ३०० ई.पू. से २०० ई.पू. माना है।[३] कामिल बुल्के का मत है कि रामायण की रचना ३०० ई.पू. से २०० ई.पू. में हुई।[४] वेबर का मत है कि रामायण की रचना २०० ई.पू. में हुई होगी।[५] भारतीय विद्वानों में चिंतामणी विनायक वैद्य ने रामायण के रचनाकाल की सीमा द्वितीय शताब्दी ई.पू. निर्धारित की है।[६] परमहंस जगदीशवरानंद ने युगों की गणना के आधार पर बताया कि राम एवं रामायण का काल आज से लगभग नौ लाख वर्ष पूर्व था। तथा राम एवं वाल्मीकि एक दूसरे के समकालीन थे।[७] बाल गंगाधर तिलक ने ज्योतिष गणना के आधार पर रामायण का रचनाकाल १० हजार से आठ हजार ई.पू. सिद्ध करने का प्रयास किया है।[८] काशी प्रसाद जायसवाल ने ५०० ई.पू. से २०० ई.पू. तक का समय रामायण का रचनाकाल माना है।[९]

रामायण का महत्व

इतिहास के विद्यार्थी के लिए रामायण की ऐतिहासिकता एवं उसके महत्व से परिचित होना आवश्यक है। मानव जीवन का ऐसा कोई पक्ष नहीं जिसकी झांकी रामायण में न मिलती हो अथवा ऐसा कोई सिद्धांत नहीं जिसका आभास उसमें न दिया गया हो।[१०] रामायण ने हिंदू धर्म के सामाजिक जीवन के स्वरूपीकरण में अपना महान योगदान दिया। उसमें वर्णित पात्र आज भी समाज के लिए आदर्श प्रस्तुत करते हैं। धार्मिक एवं नैतिक आदर्शों का भंडार होने के साथ-साथ यह ग्रंथ एक महत्वपूर्ण मानवीय समाजशास्त्र भी है। एक पुरातन युग की जीवित परंपराओं, धारणाओं, चिंताओं, आकांक्षाओं एवं भावनाओं का चित्रण करने के कारण यह ग्रंथ प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति की अमूल्य निधि है।

कन्या का समाज में स्थान

किसी भी देश अथवा समाज की गति इस बात पर निर्भर करती है कि उस समाज एवं देश में स्त्रियों की दशा कैसी है। इस दृष्टि से भारतीय समाज में स्त्रियों को प्रारंभ से ही गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त रहा है। माता, पत्नी और पुत्री सभी रूपों में उसका उच्च स्थान रहा है। समाज में उसका प्रथम रूप पुत्री है। नारी का यह रूप प्रत्येक काल में स्नेह पाता रहा है। किंतु इसके बावजूद समाज में प्रांरभ से पुत्र की अपेक्षा पुत्री की स्थिति उपेक्षणीय रही है। उसके सामाजिक एवं आर्थिक अधिकार भी पुत्र की अपेक्षा गौण रहे हैं। ऋगवैदिक काल में पुत्र का स्थान पुत्री की अपेक्षा उच्च था। धार्मिक दृष्टि से वंश चलाने के लिए और योद्धाओं की आवश्यक्ता होने के कारण पुत्री की अपेक्षा पुत्र की ही कामना की जाती थी। ऋगवेद में स्थानस्थान पर वीर पुत्रों की कामना का उल्लेख तो मिलता है, किंतु पुत्री की कामना का एक भी उल्लेख नहीं मिलता।[११] इससे स्पष्ट होता है कि ऋगवैदिक आर्य पुत्री के जन्म पर प्रसन्नता का अनुभव नहीं करते थे।[१२] लेकिन फिर भी ऋगवेद में कहीं पर भी पुत्री के जन्म को निंदित नहीं माना गया है। यज्ञ करने वाले दम्पत्ति की यह कहकर प्रशंसा की गई है कि वे पुत्र तथा पुत्रियों से युक्त होकर पूर्ण आयु को प्राप्त करते हैं।[१३] रामायण के अनुसार पिता के लिए कन्यादान परोधर्म[१४] एवं स्वधर्म[१५] समझा जाता था। अतः उसका निरादर करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इस समय कन्या को सभी सुख सुविधाएं[१६], स्वतंत्रता[१७], शिक्षण[१८], एवं मातृत्व[१९] प्रदान किया जाता था।

कन्या की शिक्षा

भौतिक एवं आध्यात्मिक जीवन निर्माण के लिए शिक्षा नितांत आवश्यक होती है। मनुष्य एवं समाज का आध्यात्मिक एवं बौद्धिक उत्कर्ष शिक्षा के माध्यम से ही संभव माना जाता है। डा० अल्तेकर का कथन है कि ईस्वी सन् के प्रारंभ तक वैदिक शिक्षा के लिए उपनयन की प्रथा कन्याओं के लिए उतनी ही सामान्य थी जितनी पुरूषों के लिए। इन सबके आधार पर कहा जा सकता है कि कन्याओं का भी विद्यारंभ से पूर्व उपनयन संस्कार किया जाता था।[२०] रामायण में यद्यपि कन्याओं के उपनयन संस्कार का कोई उल्लेख नहीं मिलता।[२१] लेकिन इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि तत्कालीन समाज में उनकी शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। रामायण में कौशल्या, कैकयी, तारा, सीता, वेदवती, स्वयंप्रभा तथा शबरी के विवरण मिलते है जिन्होंने भलिभांति शिक्षा प्राप्त की थी। वास्तव में विवाह से पूर्व उन्हें वैदिक एवं स्मार्त क्रियाकलापों तथा उनमें प्रयुक्त होने वाले मंत्रों की शिक्षा दी जाती थी।[२२] रामायण के अनुसार उस समय कई ऐसे आश्रम स्थापित थे जहां सुशिक्षित नारियां धर्म चर्चा एवं कर्मकांड में निरत रहती थी। मेरूसावर्णि की पुत्री स्वयंप्रभा[२३] एक ब्रह्मवादिनी कन्या थी। जिसने अपने पिता के आश्रम में रहकर शिक्षा प्राप्त की थी। इसी तरह वेदवती[२४] ने भी अपने पिता कुशध्वज के सानिध्य में वेदों एवं कर्मकांड की उच्च शिक्षा प्राप्त की थीा सैन्य शिक्षा के रूप में रामायण में उल्लेख मिलता है कि कौशल्या एवं कैकयी ने समुचित रूप से सैन्य शिक्षा पाई थी।

विवाह

हिंदू समाज व्यवस्था में प्रारंभ से ही विवाह को मनुष्य के व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग माना गया है। वस्तुतः विवाह एक सामाजिक आवश्यकता है, जिसके माध्यम से मानव का गृहस्थ जीवन प्रारंभ होता है, गृहस्थ जीवन से परिवार बनता है तथा परिवार से समाज का निर्माण होता है। विवाह के अंर्तगत केवल स्त्री-पुरूष का यौन संबंध ही नहीं आता अपितु उसकी सामाजिक एवं धार्मिक क्रियाएं भी आती हैं, जिनके माध्यम से वह अपना सर्वांगीण विकास करता है। सही अर्थों में परिवार का विकास एवं समाज का संयोजन इसी पर आधारित है। रामायण में पति-पत्नी को रथ के दो पहियें बताया गया है। जिस प्रकार एक पहिये से रथ नहीं चल सकता उसी प्रकार पत्नीविहीन पुरूष का जीवन भी सुखी नहीं रह सकता।[२५] विवाह का प्रमुख उद्देश्य धार्मिक कृत्यों का पालन था जो पत्नी के बिना असंभव था। रामायण में इसीलिए पत्नी पति का अद्र्धांश कही गई है।[२६] विवाह का दूसरा प्रमुख उद्देष्य पुत्र प्राप्ति था। रामायण के अनुसार जो व्यक्ति अपने अनुरूप पत्नी को पाकर धार्मिक अनुष्ठान किए बिना ही, संतानहीन अवस्था में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तो वह भाग्यहीन माना जाता है,[२७] क्योंकि पुत्र ही पिता को पुत नाम नरक से त्राण दिलाता है।[२८] यौन इच्छा की संतुष्टि भी विवाह का प्रमुख उद्देश्य रहा है। व्यक्ति की यौन इच्छा की पूर्ति के लिए विवाह एक सुसभ्य तथा सुसंस्कृत माध्यम था। प्राचीन भारतीय समाज में अनेक प्रकार के विवाह प्रचलित थे। यद्यपि वैदिक साहित्य में ब्राह्म, देव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गांधर्व, राक्षस तथा पैशाच आदि प्रकार के विवाह का उल्लेख मिलता है।[२९] उपर्युक्त आठ प्रकार के विवाह के अतिरिक्त प्राचीन समाज में स्वयंवर की प्रथा भी प्रचलित थी। स्वयंवर का अर्थ है वधू का अपने अनुरूप स्वयं वर का चयन करना। सीता ने स्वयं अनुसूईया के समक्ष अपने विवाह को स्वयंवर बताया है।[३०] राजा जनक ने सीता के स्वयंवर की समय प्रतिज्ञा की थी कि जो कुमार शिव के धनुष को उठाकर भंग कर देगा निःसंदेह मेरी कन्या उसी की पत्नी होगी।[३१]

पत्नी के रूप में स्त्री

हिंदू समाज में प्रारंभ से ही स्त्रियों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वह माता, पत्नी तथा पुत्री सभी रूपों में पूजनीय रही है। दम्पत्ति शब्द का प्रयोग यह स्पष्ट करता है कि वह अपने पति के समान ही घर की स्वामिनी होती थी। रामायण में पत्नी की महिमा बताते हुए कहा है कि इस युग में पति-पत्नी के मध्य वैसी ही समानता पायी जाती थी, जैसी दो मित्रों के मध्य सामान्यतः पायी जाती है। कौशल्या के संदर्भ में महाराज दशरथ का कथन है कि वह दासी, सखी, पत्नी एवं माता की भांति मेरा प्रिय करने की इच्छा से मेरी सेवा में उपस्थित रहती है।[३२] पत्नी के लिए प्रयुक्त हुए शब्द सहधर्मचरी,[३३] सहधर्मचारिणी,[३४] सहचारिणी[३५] उसकी महत्ता को प्रतिपादित करते हैं। साथ ही पत्नी को पति की अद्र्धांश[३६] भी कहा गया है। पत्नी के सदगुणों से प्रभावित हुआ पति, पत्नी की पूजा,[३७] उसका सत्कार[३८] तथा सम्मान प्रदान करता था।[३९] राम भी सीता के हृदय में प्रीतिपात्र बनकर रहते थे। रामायण में राम के अनुसार पत्नी को जीवन पर्यंत पति की सेवा करते रहना चाहिए। जिसके प्रभाव से वह बिना देवोपासना एवं व्रत उपवासादि करे स्वर्ग लोक को प्राप्त कर सकती है।[४०] सीता का चित्त हमेशा राम में अनुरक्त रहता था।[४१] इसी कारण उसे अनेक स्थलों पर अनुरक्ता[४२] एवं अनुव्रता[४३] कहा गया है। सीता का स्वयं कथन था कि पत्नी का कर्तव्य है कि वह सभी शारीरिक सुखों की चिंता को छोड़ पति की सेवा एवं

पति का प्रिय करे।[४४] पुत्रवधु से आशा की जाती थी कि वह परिवार के सभी सदस्यों के प्रति अनुकूल आचरण करती हुई नित्य कल्याणी बनी रहे। इसी कारण वधू के लिए एक शब्द कल्याणी आया है।[४५] श्री राम ने सीता को इस कारण से कुलपालिनी भी कहा है।[४६] पति के अनुजों से विवाहिता स्त्री को आदर प्राप्त होता था। भरत, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न सीता को माता तुल्य मानते थे।[४७] वन में लक्ष्मण उनके चरणों की प्रतिदिन पूजा करते थे।[४८] भरत[४९] एवं शत्रुघ्न[५०] ने भी सीता के चरणों को स्पर्श किया था। पुत्रों से आदर प्राप्त करना एवं सेवा कराना[५१] विवाहिता का अधिकार था। पत्नी को अन्य अनेक अधिकार प्राप्त थे। पति के कर्तव्यों में सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्य पत्नी का भरण पोषण करना था। रामायण में पति के लिए भर्ता[५२] एवं पति[५३] शब्द का अर्थ क्रमशः भरण एवं रक्षण करने वाला कहा गया है। रामायण के अनुसार सीता को विवाह के समय अनेक प्रकार के वस्त्र, पशु, रजत, स्वर्ण मुद्रायें एवं अनेक दास-दासियां दी गई थी।[५४] जिस पर सीता का स्वामित्व था। रामायण में इस प्रकार की सम्पत्ति को स्त्री-धन कहा गया है।[५५]

माता के रूप में स्त्री

भारतीय समाज में प्रारंभ से ही माता का स्थान सबसे अधिक आदरणीय एवं महत्वपूर्ण रहा है। माता के चरित्र एवं उपदेशों का प्रभाव उसकी संतान पर पड़ता है इसलिए वह संतान के लिए श्रेष्ठ गुरू है। ऋगवेद में जिस प्रकार द्यौ को पिता कहा गया है, उसी प्रकार पृथ्वी को माता कहकर संबोधित किया गया है।[५६] पुत्र अपनी माता को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने देते थे तथा सदैव माता की सेवा में तत्पर रहते थे। माता को अनजाने में भी कष्ट या दुख पंहुचाने पर पुत्र अपने को निकृष्ट मानने लगता था।[५७] पिता की आज्ञा मानकर माता को दुखपूर्ण स्थिति में देखना भी पुत्र के लिए अहितकर था।[५८] रामायण के अनुसार तत्कालीन समाज में पुत्र माता-पिता की सेवा करना एवं उनकी आज्ञा का पालन करना अपना परम कर्तव्य समझते थे।[५९] माता के प्रति पुत्र का कर्तव्य था कि माता को देखते ही उसके पास जाकर उसका अभिवादन करके, उससे वार्तालाप करें तथा माता के पास से लौटते समय भी उनका अभिवादन करें।[६०] रामायण में कहा गया गया है कि यदि पुत्र की किसी त्रुटि के कारण माता का प्राणांत हो जाए तो पुत्र को ब्रह्म हत्या का पाप लगता है और जगत में उसके जैसा पापात्मा कोई नहीं है।[६१] रामायण के अनुसार जो व्यक्ति माता की नियमपूर्वक सेवा करता है उसे स्वर्गलोक एवं तपोबल दोनों की प्राप्ति होती है।[६२]

विधवा के रूप में स्त्री

विधवा शब्द संस्कृत के धव धातु से बना है जिसका अर्थ है, वह स्त्री जिसका पति जीवित न हो, अर्थात जिसका पति मर गया हो वह विधवा है।[६३] रामायण में विधवा स्त्री की तुलना नक्षत्र एवं चंद्रमा विहीन रात्री से की गई है।[६४] रावण के मारे जाने पर पुण्यमय उत्सव से हीन हुई लंका नगरी की उपमा उस स्त्री से की गई है, जिसका स्वामी नष्ट हो गया है।[६५] पुत्रहीन विधवा स्त्री की स्थिति तो समाज में और भी अधिक कष्टप्रद होती थी, क्योंकि इस प्रकार की स्त्री को हर किसी के दुव्र्यवहार को सहना पड़ता था।[६६] राजा दशरथ की मृत्यु होने पर उनकी प्रमुख तीनों रानियां शोकगमन हो गई थी।[६७] कौशल्या पति के निधन पर सबसे अधिक दुखी थी।[६८] सुमित्रा की भी यही दशा थी।[६९] राजा असित की मृत्यु के समय उनकी पत्नी कालिंदी गर्भवती थी,[७०] जिस कारण उसने अपना शेष जीवन पुत्र का पालन-पोषण करने में व्यतीत किया। यही पुत्र इक्ष्वाकु कुल का प्रसिद्ध राजा सगर हुआ।[७१] रामायण के अध्ययन से पता चलता है कि तत्कालीन समाज में विधवा स्त्री का जीवन पति की मृत्यु के पश्चात भौतिक सुखों से वंचित हो जाता था।[७२] विधवा स्त्री विषेष प्रकार के आभूषण, परिधान धारण नहीं करती थी और न ही सुगंधित लेप शरीर पर लगाती थी। भरत ने अपने मृत पिता के लिए उद्गार व्यक्त करते हुए कहा कि आपके बिना यह पृथ्वी उसी प्रकार शोभाहीन हो रही है, जिस प्रकार विधवा कांतिहीन हो जाती है।[७३] राम से मिलने चित्रकूट जाते समय एवं लंका विजय से लौटते समय राम से मिलने के लिए दशरथ की सभी रानियां रथों पर आरूढ़ होकर गयी थी।[७४] मांगलिक अवसरों पर भी विधवा की उपस्थिति अशुभ नहीं मानी जाती थी। राम के वन से लौटते समय जिन लोगों ने उनका स्वागत किया था, उनमें उनकी विधवा माताएं भी थी।[७५] राम के राज्याभिषेक के समय उनकी विधवा माताओं ने सीता का श्रृंगार किया था।[७६] जब शत्रुघ्न को मधेपुरी का राजा बनाया गया, तब राजभवन में सारे मांगलिक कार्य उनकी माताओं कौशल्या, सुमित्रा एवं कैकयी ने संपन्न किए थे।[७७] श्री राम के अश्वमेघ यज्ञ में भी माता कौशल्या ने भी भाग लिया था।[७८] इस समय पुत्र ही पिता की सम्पत्ति का स्वामित्व प्राप्त कर अपनी माता का भरण पोषण करता था।

सामाजिक प्रथाएं

प्राचीन काल से ही समाज में अनेक प्रथाएं विद्यमान रही हैं। इनमें सबसे प्रमुख देहज प्रथा थी। रामायणकालीन समाज में कन्या के विवाह के अवसर पर कन्या दान करते समय उसे कन्या धन के नाम से उपहार दिए जाते थे। राजा जनक ने सीता के विवाहोत्सव पर प्रभूतकन्या धन दिया था जिसमें सैकड़ों गौएं, कंबल, रेशमी एवं सूती वस्त्र, अलंकृत हाथी, घोड़े, रथ, पैदल सिपाही, सखी रूप में सौ कन्याएं, अनेक दास-दासियां तथा बहुत से मोती, मूंगे एवं स्वार्णाभूषण आदि सम्मिलित थे।[७९] कन्या को जो धन सामग्री पिता द्वारा दी जाती थी उस पर कन्या का अधिकार होता था।[८०] रामायण में सती होने का केवल एक उदाहरण उत्तरकांड़ में मिलता है। राजर्षि कुषध्वज को रात में सोते समय षंभु नामक दैत्य ने मार डाला। तब कुशध्वज की पत्नी ने पति के शव का आलिंगन कर स्वयं को उसके साथ सती कर लिया था।[८१] प्राचीन काल में समाज में स्त्रियों के प्रति सहानुभूति पूर्ण व्यवहार होता था और उसे अवध्य माना जाता था। यहां तक की स्त्री का वध करने वाला राजा भी बालक या वृद्ध का वध करने वाले के समान माना जाता था।[८२] लेकिन प्रजा हित की दृष्टि से राजा को स्त्री वध करने की अनुमति थी, इसमें पाप की उपलब्धि राजा के कर्तव्य के समक्ष नगण्य समझी जाती थी। विश्वामित्र ने राम को इसी प्रकार तर्क देकर ताडका वध के लिए प्रेरित किया था।[८३] लक्ष्मण ने व्यभिचारिणी सूर्पनखा को नाक-कान काटकर केवल रूप-हीन एवं अपमानित करके इसलिए छोड़ दिया था क्योंकि वह स्त्री वध के पाप से बचना चाहते थे।[८४] स्वयं सूर्पनखा ने रावण से कहा था कि राम ने मेरे प्राण इसलिए छोड़ दिए क्योंकि वे स्त्री-हत्या का पाप नहीं करना चाहते थे।[८५] जब इंद्रजीत माया-रचित सीता का वध करने पर उतारू हो गया तब हनुमान ने उसे चेतावनी दी कि स्त्री हत्यारे को मृत्यु के बाद उस लोक

में ले जाया जाता है जहां कुत्सित अपराधी भी जाने में हिचकिचाते हैं।[८६] स्वयंवर प्रथा का प्रचलन भी यह स्पष्ट करता है कि उस समय स्त्रियों में परदे का कोई बंधन नहीं था। लेकिन रामायण में उल्लेख मिलता है कि उस समय राजपरिवार की स्त्रियां उत्तरीय धारण करके ही नगर से बाहर निकलती थी।[८७] सीता ने पंचवटी में अतिथि रूप में आए रावण से बिना परदा किए ही वार्तालाप किया था।[८८]

व्यभिचार

काम हिंदू समाज में चार पुरूषार्थों में एक है। काम एक ऐसा पुरूषार्थ है जो सभी प्राणियों में सहज रूप से उदित होता है। जबकि इसके विपरीत अन्य पुरूषार्थों को श्रम द्वारा अर्जित करना पड़ता है। रामायण में उल्लेख मिलता है कि यदि कोई व्यक्ति किसी स्त्री से बल पूर्वक अथवा उसकी समहमति से संभोग करता था तो ऐसे संबंध स्थापित करने वाले पुरूष को वागदण्ड दिया जाता था।[८९] राजा दण्ड ने भार्गव ऋषि की पुत्री अरजा का बलपूर्वक उपभोग किया था, तब महर्षि भार्गव ने उसे इस कार्य के लिए शाप दिया था।[९०] तत्कालीन समाज में कोई भी व्यक्ति किसी पराई स्त्री पर बुरी दृष्टि नहीं डालता था। यदि कोई भी व्यक्ति इस अपराध को करता था तो उसे दण्ड स्वरूप देश निकाला या अग्नि-परीक्षा का दण्ड दिया जाता था।[९१] इस काल में वेश्याओं के प्रमाण भी मिलते हैं। वेश्याएं केवल कामोपभोग का ही साधन नहीं थी अपितु वे कला की पोषिका भी थी। राजा भी इन्हें सम्मानपूर्वक[९२] किसी भी कार्य में नियुक्त करते थे। वे अपने राजाओं के हित के लिए उनका अनुसरण करती थी। रामायण में उल्लेख मिलता है कि ऐसी महिलाओं को कुंवारियों के समान समझा जाता था। राम के राज्याभिषेक के अवसर पर महर्षि वशिष्ठ ने आदेश दिया था कि समस्त तालजीवी पुरूष और सुंदर वेषभूषा से युक्त वेश्यायें राजभवन की दूसरी कक्षा में जाकर खड़ी हो जाएं।[९३]

दासी

राजाओं के अंतःपुर में अनेक दासियां होती थी, जो प्रायः उन्हें दहेज, युद्ध, दानादि में मिलती थी। इनका मुख्य कार्य राजाओं, रानियों, राजकुमारियों के साथ-साथ ब्राहम्णों एवं अतिथियों की सेवा करना था। उनकी विशेष कृपा अपने स्वामी (राजाओं) एवं अतिथियों के प्रति होती थी।[९४] ये दासियां विभिन्न कलाओं से परिपूर्ण होती थी और जितना अधिक अपने शारीरिक-सौंदर्य एवं रूप-लावण्य से पूर्ण होती थी उन्हें उनके कार्य का उतना अधिक पारितोषिक दिया जाता था।[९५]

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि रामायणकालीन समाज में नारी ने अपने सभी रूपों में तात्कालीन समाज के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत किया है, जो तब से लेकर आज तक भारतीय नारियों के लिए आदर्श बना हुआ है। यद्यपि यह भी सही है कि इनमें नारी के चरित्र से संबंधित अनेक परस्पर विरोधी बातों को समावेश है, किंतु इसका मूल कारण इसमें समय-समय पर विद्वान लेखकों के द्वारा प्रक्षिप्त अंशों को जोड़ना रहा है। जिससे समय परिवर्तन के कारण उसका प्रभाव इस ग्रंथ पर भी पड़ा है। लेकिन फिर भी यह ग्रंथ आज भी भारतीय समाज के लिए एक आदर्श प्रस्तुत करता है। अल्तेकर महोदय का कहना है कि विश्व की लगभग सभी प्राचीन सभ्यताओं का अध्ययन करते समय जितना प्राचीनतम काल की ओर जाते हैं स्त्रियों का स्थान समाज में उतना ही असंतोषजनक पाते हैं। लेकिन इसके विपरीत जब हम भारतीय सभ्यता के प्राचीनतम् काल की ओर दृष्टिपात करते हैं, तो स्त्रियों का स्थान समाज में उतना ही महत्वपूर्ण पाते हैं।[९६]

संदर्भ ग्रंथ

1. गोरेशियो रामायण, भाग-१०, प्रस्तावना
2. मैक्डोनल, ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिट्रेचर, पृ. ३०४–३०९
3. विंतरनित्स, ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिट्रेचर, वॉल्यूम-१, पृ. ५०२–५०९
4. कामिल बुल्के, रामकथा, पृ. ३०–३२
5. ए जनरल ऑफ बिहार एंड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, भाग ४, पृ. २६२
6. चिंतामणी विनायक वैद्य, द रिडल ऑफ द रामायण, पृ. १९
7. परमहंस जगदीश्वरानंद, वाल्मीकि रामायण, पृ. १८ एवं ३६५ की पादटिप्पणी
8. के० एस० रामास्वामी, द कंपोजिशन एंड डेट ऑफ द रामायणा, पृ. ३
9. जे० वी० ओ० आर० एस०, भाग ४, पृ. २६२
10. एस० एन० व्यास, रामायण कालीन समाज, पृ. ४
11. ऋग्वेद १.९१.२०, १.९२.१३, ३.१.२३
12. वही, १.६९.३
13. वही, ८.३९.८
14. रामायण, वाल्मीकिकृत, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १९२९ (संपादक भगवत दत्त), १.१२.१५
15. वही, १.७३.१२
16. वही, २.१७.१२
17. वही, १.३२.१३
18. वही, १.३२.२१; २.१.३३; ३.४.६
19. वही, २.११८.३
20. ए० एस० अल्तेकर, द पोजीशिन ऑफ विमेन इन हिंदू सिविलाइजेशन, पृ. २०९
21. अर्चना विश्नोई, पूर्वोक्त, पृ. ११७
22. एस० एन० व्यास, पूर्वोक्त, पृ. १५२
23. रामायण, ४.५१.१
24. वही, ७.१२.२
25. वही, २.३९.३१
26. वही, ७.८७.२४
27. वही, २.७५.२६
28. वही, २.१०७.१२
29. आश्वलायन गृह्यसूत्र, १/६
30. रामायण, २.११८.४२
31. वही, २.११८.४२
32. वही, २.१२.६८
33. वही, १.७३.२६; २.३०.४०
34. वही, २.११७.२९
35. वही, ६.३२.२०
36. वही, ७.८७.२४
37. वही, २.३८.१६; ६.४८.४
38. वही, २.१२.७
39. वही, २.१६.१४
40. वही, २.२४.२५–२६
41. वही, ५.२४.९

42. वही, ५.५९.२४
43. वही, ५.१९.८२२
44. वही, ७.४८.१६
45. वही, २.२६.३७
46. वही, ३.६३.१७
47. वही, २.४०.९
48. वही, ४.६.२३
49. वही, ६.१२७.४२
50. वही, ६.१२९.४९
51. वही, २.२१.२३
52. वही, २.२४.१२
53. वही, २.२७.६; २.३९.२४
54. वही, १.७४.३–६
55. वही, १.७४.३–६
56. ऋग्वेद, १.१६४.२३
57. एस० एन० व्यास, पूर्वोक्त, पृ. १७८
58. रामायण, २.३०.३२
59. वही, ४.३१.३७
60. वही, २.४.३४
61. वही, २.२१.२७–२८
62. वही, २.२१.२४
63. एन० के० दत्त, विडो इन एंशिएंट इंडिया, आईएचक्यू, भाग १४, पृ. ६४
64. रामायण, २.७६.९; २.६६.२४; २.१०१.११
65. वही, ५.२८.२८
66. वही, ३.१९.१८
67. वही, २.६५.२५
68. वही, २.७५.७
69. वही, २.९२.२२
70. वही, १.७०.३०
71. वही, १.७०.३१–३५
72. वही, ४.२३.९
73. वही, २.७६.९
74. वही, २.८३.१६; १.१२७.१५
75. वही, १.१२७.१६
76. वही, ६.१२८.१७
77. वही, ७.१६३.१६–१८
78. वही, ७.९१.२४
79. वही, १.७४.३–६
80. वही, १.७४.५
81. वही, ७.१७.१४
82. वही, २.७९.३७
83. वही, १.२५.१५–२१
84. वही, ६.९४.७; ६.३४.१२
85. वही, ३.३४.१३
86. वही, ६.८१.२२
87. वही, ६.१११.६१–६२
88. वही, ३.४७.२
89. वही, ७.८१.१६; ७.२६.५३–५७; १.४८.९
90. वही, ६.८०.१७; ७.८०.८१
91. वही, १.६.८–९; २.७२.४३–४५; ६.८७.२३
92. वही, १.१०.५
93. वही, २.३.१७–१८
94. वही, २.६५.७
95. वही, २.६५.७–९; ७.१२८.१०; २.३३.२; ६.१२१.३; ५.१८.१०
96. ए० एस० अल्तेकर, पूर्वोक्त, पृ. १५५